आर्थिक विकास संस्थान के स्वर्ण जयंती समारोह के उद्‌घाटन के अवसर पर प्रधानमंत्री का भाषण

(दिनांक 15.12.2007)

आर्थिक विकास संस्थान के स्वर्ण जयंती समारोहों का उद्‌घाटन करने के अवसर पर आपके बीच उपस्थित होकर मुझे बेहद प्रसन्नता हुई है। पिछले वर्ष राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद ने अपनी स्वर्ण जयंती मनाई थी। ये स्वर्ण जयंतियां हमें याद दिलाती हैं कि हमारे देश में 1950 का दशक आर्थिक अनुसंधान और शिक्षण के लिए वास्तव में स्वर्ण युग था। अनेक अर्थों में वह समय संस्थानों के निर्माण का था।

हमारा देश इस दृष्टि से भाग्यशाली रहा है कि महान संस्थान निर्माताओं का एक युग हमारे यहां बीता है। विशेष रूप से हमारा अर्थशास्त्र सौभाग्यशाली है, जिसमें अनेक विशिष्ट अर्थशास्त्री हुए हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के अनेक संस्थानों का निर्माण किया। आर्थिक विकास संस्थान निश्चित रूप से उन्हीं संस्थानों में से एक है। अपने अंतर-विषयी स्वरूप के कारण आईईजी हमेशा समाज शास्त्रियों और अन्य विषयों के विशिष्ट विद्वानों का निवास रहा है।

मैं आर्थिक विकास संस्थान के संस्थापक महान संस्थान निर्माता प्रो0 वी.के.आर.वी. राव की स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पित करके गोरान्वित महसूस कर रहा हूं। मैं डॉ0 पी.एन धर, स्वर्गीय डॉ0 ए.एम खुसरो, डॉ0 पी.सी.जोशी, डॉ0 राज कृष्ण, प्रो0 धरम नारायण, डॉ0 अशीष बोस, डॉ0 चौधरी हनुमंत राव, डॉ0 टी.एन. मदान, डॉ0 के कृष्णमूर्ति, डॉ0 एस आर हाशिम, डॉ0 बी.बी.भटट्‌ाचार्य और प्रो0 बिसारिया, जे एन सिन्हा जैसे सामाजिक शास्त्रियों और उनके कई सहयोगियों के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं। मैं डॉ0 कंचन चौपड़ा को इस गौरवशाली परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए बधाई देता हूं।

आर्थिक विकास संस्थान ने अनुप्रयुक्त अर्थशास्त्र में अनुसंधान को सुदृढ़ बनाने और अंतर विषयी अनुसंधान को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह संस्थान भारतीय आर्थिक सेवा और आर्थिक नीति निर्माण में संलग्न अन्य सरकारी अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण आधार भी रहा है। जनसांख्यिकी, कृषि, पर्यावरण, औद्योगिक विकास, औद्योगिक नीति, परियोजना मूल्यांकन और स्वास्थ्य, अर्थ-व्यवस्था जैसे अनेक विषयों में अनुसंधान की दृष्टि से आर्थिक विकास संस्थान का प्रभावशाली रिकॉर्ड रहा है। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में तथा देश में नीति निर्माण के कार्य में इस संस्थान ने हमारी योजना प्रक्रिया में व्यापक योगदान किया है। ऐसा करते समय आर्थिक विकास संस्थान शैक्षिक जगत के सैद्धांतिक संस्थानों और नीति निर्माण के व्यवहारिक जगत के बीच एक महत्वपूर्ण सम्पर्क के रूप में उभरा है। व्यावहारिक जगत में परिवर्तन के प्रति समर्पित इस संस्थान अपने अनेक सदस्यों को सक्षम बनाया है कि वे शैक्षिक व्यवसाय को नीति निर्माण में भागीदारी के साथ जोड़ सकें। वास्तव में प्रो0 वी.के.आर.वी ने अनुप्रयुक्त अर्थशास्त्री की इस दोहरी पहचान को सर्वोत्कृष्ट रूप में मुहुर्त रूप दिया। धर साहिब, खुसरो साहिब और हनुमंत राव जैसे अन्य अर्थशास्त्रियों ने उनके उदाहरण का अनुसरण किया। अपने-अपने विषय में विद्वान होने के साथ-साथ उन्होंने नीति निर्माण के क्षेत्र में सक्रिय योगदान किया और व्यापक स्तर पर लोगों के हितों के प्रति गंभीर सरोकार व्यक्त किया।

इस भूमिका में विशेषज्ञों को सक्षम बनाने में अर्थशास्त्र का एक विषय के रूप में विकास हुआ है। इसने अर्थशास्त्रियों को समाज में सामाजिक परिवर्तन के एजेंट बनने में सक्षम बनाया है। अनुसंधान और नीति के बीच इस सम्पर्क से मानविकी और समाज विज्ञान के कुछ अन्य विषयों को भी लाभ पहुंचा है। वास्तव में, एक विषय के रूप में अर्थशास्त्र, या ''राजनीतिक अर्थव्यवस्था'', जैसा कि शुरू में कहा जाता था, सिद्धांतकारों और नीति निर्माताओं के बीच परस्पर वार्तालाप का उत्पाद है। ऐडम स्मिथ और डेविड रिकॉर्डो, और फ्रांसीसी फिजियोक्रेट्स, तथा बाद में उपयोगितावादी, सभी ऐसे चिंतक थे जो अपने युग के सार्वजनिक नीति सम्बन्धी मुद्दों का अध्ययन करते थे। यह परंपरा दिल्ली स्कूल में उस समय काफी हद तक जीवित रही जब प्रो0 राव और प्रो0 राज उसके अध्यक्ष थे। किन्तु, शेष समय में लगता है दिल्ली स्कूल सैद्धांतिक कार्य का केन्द्र बन गया और आर्थिक विकास संस्थान ने अनुप्रयुक्त अर्थशास्त्र पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया। मेरा यह विश्वास है कि अगर एक विषय के रूप में अर्थशास्त्र का विकास करना है तो उसे इन दोनों पहलुओं को साथ लेकर चलना होगा। हमें प्रो0 वी.के.आर.वी.राव के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए जिन्होंने इन दोनों शानदार संस्थानों का साथ-साथ निर्माण किया। उनके बीच अच्छे पड़ोसी के सम्बन्धों से दोनों संस्थानों और हमारे विषय को लाभ पहुंचा है।

एक अर्थशास्त्री के रूप में मैं स्वतंत्रता परवर्ती युग में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में अर्थशास्त्रियों की भूमिका पर गर्व महसूस करता हूं। जब भी मुझे दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स, राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद और भारतीय सांख्यिकीय संस्थान के प्लेटिनम जयंती समारोह में बोलने का अवसर मिला, तो मैंने आधुनिक भारत के निर्माण में कई विशिष्ट अर्थशास्त्रियों के राष्ट्र भक्तिपूर्ण योगदान के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। मैंने विकसित देशों सहित दूर-दूर से भारत आने वाले उन अर्थशास्त्रियों का स्मरण किया जो भारतीय अनुभव का अध्ययन करने और उससे कुछ सीखने के लिए हमारे यहां आए। हमारा शैक्षिक जगत उन प्रारंभिक दिनों में भी नए विचारों के प्रति मुक्त था। विदेशी शासन के प्रति हमारे विरोध ने कभी बाहरी विचारों के विरोध का रूप नहीं लिया। एक सभ्यता, एक समाज के रूप में हमने हमेशा दूर दराज के देशों के नए विचारों का खुलकर स्वागत किया है। यह परिसर ऐसी नयी विचारधारा के लिए उपजाऊ भूमि रहा है और प्रारंभिक काल में यहां होना एक सुखद अनुभव था।

इन दिनों अतीत का गुणगान करना एक फैशन बन गया है। किन्तु, मैं इस तथ्य को अवश्य उजागर करना चाहता हूं कि जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में आजादी के बाद के पहले 15 वर्षों में भारत ने प्रभावशाली कार्य निष्पादन किया। न केवल विकास दर के मामले में बल्कि ग्रामीण विकास और औद्योगिकरण की चुनौतियों का सामना करने में योग्यता सिद्ध करने में 1950 के दशक में भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की थी। 1960 के दशक में अर्थ-व्यवस्था को गंभीर आघात आवश्य झोलने पड़े। चीन और पाकिस्तान के साथ लड़ाईयां, 60 के दशक के मध्यवर्ती वर्षों में सूखे की समस्या और पंडित जवाहर लाल नेहरु की मृत्यु के बाद उत्पन्न राजनीतिक अनिश्चितता ने अर्थव्यवस्था को कुछ अस्त-व्यस्त कर दिया था।

60 के दशक के आघातों से उभरना 70 के दशक के मध्य में ही संभव हो पाया। इसके बाद तेल संकट का सामना करना पड़ा। मुझे कभी-कभी आश्चर्य होता है कि अगर हमने पूर्वी एशियाई और दक्षिण एशियाई अनुभव का अनुसरण किया होता तो हम समय रहते अपनी नीतियों को समायोजित कर सकते थे। उदाहरण के लिए चीन ने 1978 में उदारीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी थी। 80 के दशक में हमने केवल कुछ संकेतात्मक कदम उठाए लेकिन निर्णायक कदम 1991 के बाद ही उठाए जा सके। इस प्रकार 1950 के दशक में हम पूर्वी और दक्षिण एशियाई देशों से आगे रहते हुए भी 1990 के दशक के प्रारंभ में उनसे पीछे हो गए थे।

आज हम प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। मुझे भरोसा है कि अगर हम डटे रहे, और अगर हमने 11वीं पंचवर्षीय योजना की नीति का अनुपालन किया, तो हम वास्तव में दक्षिण एशिया और पूर्वी एशिया के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम हो सकेंगे। विश्व भारत से कामयावी की उम्मीद करता है। भारत के लोग भी ऐसी ही आकांक्षाएं रखते हैं। आज भारत की संभावनाओं के बारे में व्यापक आशावाद है और यह आशावाद हाल के कार्य निष्पादन पर आधारित है। आशाओं की स्वयं उन्हें पूरा करने में भूमिका होती है। किन्तु, अगर क्षमता से अधिक आकाक्षाएं की जायेंगी तो हताशा हो सकती है। सरकार के रूप में हमारा कार्य लोगों की योग्यताओं और क्षमताओं में निवेश करना है ताकि वे अपनी पूर्ण क्षमता के अनुरूप कार्य निष्पादन कर सकें।

भारतीय अर्थव्यवस्था में मौजूदा पुनरुत्थान को बनाए रखने के लिए निवेश और बचत में बढ़ोतरी की दरें बनाए रखनी होगी और उन्हें आगे बढ़ाना होगा। एक दशक पहले कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि भारत की सकल निवेश दर घरेलू उत्पाद के 35 प्रतिशत पर पहुंच जायेगी। इस निवेश की उत्पादकता और उत्पादन के सभी घटकों को और सुदृढ़ किया जाना चाहिए। हमें सामाजिक और आर्थिक ढांचे में व्यापक निवेश की आवश्यकता है। हमें ऐसी नीतियों की आवश्यकता है, जो सार्वजनिक निवेश को अधिक उत्पादक बना सकें और निजी निवेश को बढावा दे सकें। हमें श्रम बहुल विनिर्माण उद्योगों के तीव्र विकास की आवश्यकता है। हमें कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के नए तौर तरीकों की जरूरत है। विकास का हमारा मार्ग निश्चित रूप से पर्यावरण की स्थिरता के अनुरूप होना चाहिए। हमें ऊर्जा सुरक्षा से सम्बन्धित मुद्दों पर व्यवस्थित रूप से ध्यान देना होगा। इस सब के लिए यह जरूरी है कि आर्थिक सुधार और गंभीर परिश्रम के प्रति नयी प्रतिबद्धता कायम की जाये। इस तरह हमारी भावी संभावनाओं और भावी निष्पादन को मुहुर्त रूप देने में अर्थशास्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका निरंतर बनी रहेगी।

हाल के वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था के निष्पादन में निश्चित रूप से सुधार हुआ है फिर भी मुझे दो असंतुलनों की विशेष रूप से चिंता है जो हमारी विकास प्रक्रिया में मौजूद है। पहला है ग्रामीण-शहरी अंतराल और दूसरा है अंतर क्षेत्रीय अंतराल। हमारी सरकार ने ग्रामीण शहरी अंतराल दूर करने के लिए कई नीतियां प्रारंभ की है। हम जो निवेश ग्रामीण ढांचे, ग्रामीण शिक्षा और स्वास्थ देखभाल, ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि-इतर रोजगार के क्षेत्र में कर रहे हैं उससे निश्चित रूप से मदद मिलनी चाहिए। लेकिन यह कार्य अत्यंत विशाल है और इस दिशा में राज्य सरकारों को बहुत कुछ करना होगा।

विकास में अंतर-क्षेत्रीय असंतुलनों के आर्थिक और राजनीतिक कारण एवं परिणाम होते हैं। भारत में क्षेत्रीय विकास की पद्धति में एक ऐतिहासिक निरंतरता दिखाई देती है, जो सौ वर्ष से अधिक पुरानी है। उत्तर-पश्चिम भारत और पश्चिमी भारत तथा दक्षिणी भारत के इलाके मध्य भारत और पूर्वी भारत तथा देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र की तुलना में आगे हैं। इन क्षेत्रीय असंतुलनों को जारी नहीं रहने दिया जा सकता। वास्तव में हमारी आबादी का एक बड़ा हिस्सा देश के कम विकसित हिस्सों में रहता है। इससे श्रमिकों का अधिकाधिक प्रवास होता है और उसके सामाजिक परिणाम भी सामने आते हैं। हमें ऐसी स्थिति से निजात पाना होगा, जिसमें लोगों को वहां जाना पड़ता है जहां रोजगार उपलब्ध हो। हमें ऐसी स्थिति कायम करनी होगी जिसमें रोजगार के अवसरों को लोगों के पास पहुंचाये जाये। इसका अर्थ है विकास-विशेषकर औद्योगिक विकास को पिछड़े क्षेत्रों में ले जाना। इसका यह अर्थ भी है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि-इतर रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी करना। इसका अर्थ है पिछड़े क्षेत्रों में बेहतर सामाजिक और आर्थिक ढांचे में निवेश करना।

हमारी सरकार ने इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में कई कदम उठाए हैं। किन्तु, क्षेत्रीय असंतुलन की गति को अकेले सरकार नहीं बदल सकती। वास्तव में अकेले केन्द्र सरकार भी असंतुलनों को कम नहीं कर सकती। इस कार्य में सम्बद्ध राज्यों को योगदान करना होगा। इस बात का क्या अर्थ है कि हमारे कम विकसित राज्य अधिक विकसित राज्यों के अनुभवों से सीख सकते हैं? हमारे शासन की

प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण अंतराल कौन से हैं, जो विकास के स्तरों में क्षेत्रीय असंतुलन दूर करने की हमारी क्षमता को प्रभावित करते हैं? मैं इन सवालों को देश में अर्थशास्त्रियों के लिए सर्वोच्च वरीयता के रूप में पेश करता हूं। मुझे उम्मीद है कि आर्थिक विकास संस्थान ग्रामीण-शहरी अंतराल और विकास में अंतर-क्षेत्रीय असंतुलनों, की दोनों समस्याओं के समाधान पेश करेगा। मेरा मानना है कि इन दोनों चुनौतियों का सामना करने के लिए बनाई जाने वाली किसी भी दीर्घावधि नीति में कृषि विकास और कृषि सम्बन्धी परिवर्तनों, मानव संसाधन विकास और पिछड़े क्षेत्रों में श्रम बहुल उद्योगीकरण पर अवश्य ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए।

आयोजना के प्रारंभिक वर्षों में कृषि के महत्व पर बल देने वालों और उद्योगीकरण के महत्व पर बल देने वालों के बीच एक बहस हुआ करती थी। तथाकथित दिल्ली स्कूल और मुंबई स्कूल नाम के दो खेमे थे, जिनमें एक तरफ प्रोफेसर महलोनोबिस और राज थे तो दूसरी ओर प्रोफेसर वकील और ब्रह्मानंद थे। मैं समझता हूं कि हमें ''कृषि बनाम उद्योग'' के मुद्दे को अधिक लम्बा नहीं करना चाहिए। हमें ऐसी नीति की आवश्यकता है जिसमें ''कृषि और उद्योग'', ''ग्रामीण और शहरी'', ''कस्बों और गांवों'', के लिए समान रूप से प्रावधान किए जायें ताकि संतुलित राजनीतिक अर्थ-व्यवस्था की भाषा का इस्तेमाल किया जा सके।

हमारी कृषि अर्थ-व्यवस्था आबादी के दो तिहाई से अधिक हिस्से के लिए आजीविका प्रदान करना जारी नहीं रख सकते। राष्ट्रीय आय में कृषि की हिस्सेदारी में कमी के साथ-साथ रोजगार में उसके योगदान में भी निश्चित रूप से कमी आयी है। कृषि इतर रोजगार के अवसर अवश्य बढ़ाने होंगे। हमें नीतियों की आवश्यकता है जो इस दिशा में वांछित परिणाम ला सकती है और लाने में अवश्य मददगार होंगी।

मैं देखता हूं कि इस बारे में पर्याप्त रचनात्मक चिंतन नहीं किया जा रहा है कि हम इन चुनौतियों का सामना कैसे कर सकते हैं। राज्य बनाम बाजार सम्बन्धी बहस एक सीमित बिन्दु तक ही इन मुद्दों का समाधान कर सकती है। ''लाइसेंस-परमिट-कंट्रोल-निरीक्षण राज'' के दायरों से निजी उद्यमों को मुक्त करके हमने आय और रोजगार के नए साधन पैदा करने में सफलता प्राप्त की है। लेकिन इससे विकास में उन दो असंतुलनों का समाधान नहीं किया जा सकता, जिनकी चर्चा मैंने की है। हमारी सरकार ने एक संभावित तीसरे विकल्प के रूप में सार्वजनिक-निजी भागीदारी शुरू करके सार्वजनिक और निजी निवेश के फायदों को संयुक्त करने का प्रयास किया है। यह अभी एक शुरूआत भर है और इस दिशा में ''करके सीखने'' की बहुत गुंजाइश है।

ऐसे में सवाल यह है कि प्रगति के अन्य मार्ग कौन से हैं? विकास में विद्यमान असंतुलनों को हम कैसे कर सकते हैं? हम ग्रामीण आय कैसे बढ़ा सकते हैं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को कैसे आधुनिक बना सकते हैं? हम अपने कृषक समुदाय को अधिकारिता कैसे प्रदान कर सकते हैं और उनकी क्षमताओं और उत्पादकता में कैसे निवेश कर सकते हैं? मेरा मानना है कि इन मुद्दों पर हमें रचनात्मक सोच से काम लेना होगा। सोचने के पुराने तरीकों से काम नहीं चलेगा। समान रूप से मैं यह भी कहना चाहूंगा कि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रवेश करना यानी ''राज्य'' की विचारधारा से ''बाजार'' की धारणा में बदलाव से भी संभवतः मदद नहीं मिलेगी। विशेषकर इस तरह की चुनौतियों के समाधान में उससे कोई मदद नहीं मिलेगी।

वास्तव में यही वजह है कि भारत में हमने ''मिश्रित अर्थव्यवस्था'' का मॉडल अपनाया। खेद की बात है कि ''मिश्रित अर्थव्यवस्था'' अक्सर ''मिली-जुली अर्थव्यवस्था'' में परिणत हो जाती है। किन्तु, अतीत के इस अनुभव से हमें विकास का ऐसा नया मध्यम मार्ग अपनाने से हतोत्साहित नहीं होना चाहिए जो बाजार के सक्षमता मानदंडों को उदार अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ता है।

इन सवालों के जबाव आसान नहीं है। इक्विटी को हमेशा सब्सिडी के रूप में देखा जाता है। अगर ये सब्सिडी निर्धन तक नहीं पहुंचती, तो वास्तव में उनसे वे लक्ष्य हासिल नहीं होते, जिनके लिए सब्सिडी का प्रावधान किया गया था। मुझे लगता है कि इक्विटी के नाम पर हम सब्सिडी के लिए अधिक धन खर्च कर रहे हैं, जिसमें न तो इक्विटी के लक्ष्य हासिल हो रहे हैं और न ही सक्षमता के। क्या हम विकास में असंतुलनों और असमानताओं की समस्याओं के अधिक युक्तिसंगत समाधान खोज सकते हैं? मैं यह मुद्दा आपके विचारार्थ रखता हूं और मुझे उम्मीद है कि आईईजी जैसे संस्थान इस मुद्दे का उत्तर तलाश करेंगे ताकि नीति निर्माता उनके विचारों पर अमल कर सकें।

मैं चाहता हूं कि आईईजी जैसे संस्थान इनमें से कुछ समस्याओं के रचनात्मक उत्तर तलाश करने में योगदान करेंगे। आपको सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के अपने उत्कृष्ट रिकॉर्ड को सुदृढ़ बनाने के लिए अपने शैक्षिक संसाधन बढ़ाने चाहिए। आप वास्तव में एक दुर्लभ संस्थान हैं जो शैक्षिक उत्कृष्टता बनाए रखने में सफल रहा है और साथ ही सार्वजनिक नीति निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करता रहा है।

मैं संस्थान से जुड़े उन सभी लोगों को उनकी प्रतिबद्धता और व्यावसायिकता के लिए एक बार फिर बधाई देता हूं। मुझे उम्मीद है कि संस्थान अगले 50 वर्षों में व्यावसायिक उत्कृष्टता की नयी ऊंचाइयां छुएगा। मेरी शुभकामना है कि संस्थान देश के विभिन्न हिस्सों को असंख्य वर्षों तक उत्पादक सेवा प्रदान करे।